

योगसारप्राभृत शतक

(१)

ग्रंथकार का मंगलाचरण एवं उद्देश्य -

विविक्तमव्ययं सिद्धं स्व-स्वभावोपलब्धये ।

स्व-स्वभावमयं बुद्धं ध्रुवं स्तौमि विकल्मषम् ॥१॥

मैं अमितगति आचार्य अपने स्वभाव की प्राप्ति के लिये उस सिद्ध की स्तुति करता हूँ; जो शुद्ध, वीतराग, ज्ञानमय, अविनाशी, अच्युत, नित्य एवं अपने स्वरूप में स्थित है ।

(२)

निज शुद्धात्मा का स्वरूप एवं उसके श्रद्धान का फल -

यत्सर्वार्थवरिष्ठं यत्क्रमातीतमतीन्द्रियम् ।

श्रद्धात्त्यात्मनो रूपं स याति पदमव्ययम् ॥३२॥

जो सर्व पदार्थों में श्रेष्ठ है, क्रमातीत अर्थात् आदि-मध्य-अंत से रहित है और इन्द्रियज्ञानगोचर नहीं है - आत्मा के ऐसे रूप का जो जीव श्रद्धान करता है, वह अविनाशी पद - मोक्ष को प्राप्त होता है ।

(३)

रागादि भाव कर्मजनित हैं -

विकाराः सन्ति ये केचिद्राग-द्वेष-मदादयः ।

कर्मजास्तेऽखिला ज्ञेयास्तिग्मांशोरिव मेघजाः ॥१०५॥

मेघ के निमित्त से उत्पन्न होनेवाले सूर्य के विकार के समान जीव के राग, द्वेष, मद आदि जो कुछ भी विकार अर्थात् विभाव भाव हैं, वे सब कर्मजनित हैं; ऐसा जानना चाहिए ।